पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री प्रवचनसार गाथा १७२, अलिंगग्रहण बोल १-२
प्रणाम संकल्प-देवलाली
धनतेरस, तारीख २०-१०-१९८७, प्रवचन LA १७३

आज धनतेरस का मांगलिक दिन है। अब हमें आज धनतेरस के दिन प्रवचनसार शास्त्र का स्वाध्याय करना है। प्रवचनसार शास्त्र अर्थात् दिव्यध्वनि का सार! प्रवचन अर्थात् ऊँकार ध्वनि का सार! ये प्रवचनसारजी शास्त्र है, इसकी १७२ गाथा, उसके अलिंगग्रहण के दो बोल। मावजीभाई ने विनती की कि अपना चलता हुआ जो विषय है कि इंद्रियज्ञान, भावेन्द्रिय भी आत्मा से भिन्न है। आहाहा! और ३१ गाथा के अनुसंधान में हमने समयसार की ४९ वीं गाथा, उसका भी हमने अध्ययन किया; उसके आधार में, उसके ही आधार में ये मुख्य - १७२ गाथा (है) इसका स्वाध्याय करना है।

आत्मा का (जब तक) अनुभव नहीं होता तब तक कुछ न कुछ भूल तो रह जाती है। उसमें यह आत्मा है - यह देह से जुदा, आठ कर्म से जुदा और पुण्य-पाप से भी भिन्न है, वहाँ तक तो जीव आ जाता है। परंतु वर्तमान वर्तता हुआ जो क्षयोपशम - ज्ञान का उघाड़, भावेन्द्रिय, खंड-खंड ज्ञान जिसमें पर को जानने की क्रिया होती है - ऐसे क्षयोपशम ज्ञान का उघाड़, उसके लिये आचार्य भगवान कहते हैं कि ये ज्ञान का उघाड़, शास्त्र का ज्ञान, भावेन्द्रिय, उसका आत्मा में अभाव है। आत्मा के स्वभाव में उस भावेन्द्रिय का भी त्रिकाल अभाव है, ऐसा तेरा स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को तू लक्ष में ले। इंद्रियज्ञान मेरा है ऐसी ममता छोड़ दे। आहाहा! ये शुभाशुभभाव तो तेरे नहीं, वे तो कषाय हैं, वे तो कर्मबंध का कारण हैं, वे तो वर्तमान आकुलता-दुख का कारण हैं और भविष्यकाल (में) दुःख के निमित्त मिलें उसका भी कारण कषाय है। परंतु उनसे जुदा ये भगवान अतीन्द्रिय ज्ञानमयी आत्मा है कि जिसमें इंद्रियज्ञान का भी अभाव है। ऐसी एक बात इस १७२ गाथा में अलिंगग्रहण के २० बोल (में) है, उसका हमें स्वाध्याय करना है।

१७२ गाथा का शीर्षक लिखते हुए आचार्य भगवान फरमाते हैं कि **तब फिर जीवका, शरीरादि सर्वपरद्रव्योंसे विभाग**, पुण्य-पाप, कर्म, शरीरादि से विभाग- विशेषरूप से जुदा करने का साधन क्या है? मैं तो मानता हूँ कि शरीर जीव, राग जीव, रागी जीव (है)। आचार्य भगवान फरमाते हैं कि (ये) सारा तेरा अज्ञान है। वो ज्ञान नहीं है। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि ये आत्मा है (उसको) इन शरीरादि पुण्य-पाप के परिणाम से अधिक (और) इन व्रत-अव्रत के परिणाम, संकल्प-विकल्प से जुदा, इनसे जुदा करने का साधन क्या है? आत्मा और अनात्मा को जुदा करने का असाधारण साधन-लक्षण क्या है? **विभागका साधनभूत,** जुदा करने का साधनभूत **असाधारण स्वलक्षण क्या है**? आत्मा का स्व-अपना लक्षण क्या है कि जिस लक्षण के द्वारा देहादि से आत्मा भिन्न पड़ जाता है? भिन्न पड़ जाता है यानि (उसका) अनुभव हो जाता है। ऐसा आत्मा को जुदा करने का लक्षण क्या है? पुण्य-पाप से भिन्न करने का साधन क्या है? और वो साधन प्रगट है कि अप्रगट (है)? कि प्रगट है। सुन! जो वर्तमान

चेतना लक्षण है जीव का, उपयोग लक्षण, वो प्रगट है। उस उपयोग लक्षण के द्वारा त्रिकाली सामान्य भगवान आत्मा और वर्तमान पुण्य-पाप का परिणाम, उन दोनों के बीच में प्रज्ञाछैनी मारने से (दोनों) जुदा पड़ जाते हैं। ऐसे चेतना लक्षण से चैतन्य परमात्मा दृष्टि (में) आया और पुण्य-पाप से एकत्वबुद्धि छूट जाती है - ये साधन है। वो सुन, बताता हूँ मैं साधन।

अन्वयार्थ: जीवको अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतनागुणयुक्त, अशब्द, अलिंगग्रहण (लिंग द्वारा ग्रहण न होने योग्य) और जिसका कोई संस्थान यानि आकार **नहीं कहा गया है ऐसा जानो।** आत्मा को ऐसा जानो कि ये आत्मा अरस आदि भावरूप है और किसी अन्य लिंग से, चिन्ह से, साधन से आत्मा लक्ष में आनेवाला नहीं है। तो वो जो आत्मा लक्ष में आवे इसका साधन क्या? कि उपयोग साधन है। चेतना लक्षण से आत्मा लक्ष में आ जाता है और पर का लक्ष छूट जाता है। ऐसी बात करते समय ... ।

पुद्गल तथा अपुद्गल का रूप-स्वरूप **ऐसे समस्त अजीव द्रव्योंसे विभागका साधन तो चेतनागुणमयपना है;** साधन-लक्षण किसको कहा जाता है? कि जो जीव में पाया जाये- लक्षण, और पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल में नहीं पाया जाये। जीव में पाया जाये और अजीव में नहीं पाया जाये, इसका नाम जीव का लक्षण है। तो जब जीव का लक्षण यदि राग कहो, तो राग तो लक्षण है ही नहीं क्योंकि (राग) जीव में भी व्याप्त (होता है) और पुद्गल में भी (व्याप्त) होता है, इसीलिये अतिव्याप्ति नाम का दोष आता है; और दूसरा ये (राग रूप) जड़त्व (चेतन का) लक्षण नहीं है। वो जड़ में है और आत्मा में नहीं है, इसलिए (वो) लक्षण नहीं है। दूसरा, इस आत्मा का चेतना लक्षण ऐसा है कि जीव में है और अजीव में नहीं है। दूसरा एक चेतना लक्षण ऐसा है कि जीव की सर्व अवस्थाओं में व्यापक है, निगोद में भी चेतना है और सिद्ध में भी चेतना है। इसलिए इसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष न आवे उसका नाम लक्षण है - चेतना लक्षण। अभी (जो) उपयोग लक्षण है वो जीव का है। मगर अभी उपयोग लक्षण को मतिज्ञान उपयोग कहो, तो उसमें - सर्व अवस्था में (तो) मतिज्ञान नहीं है इसलिए मतिज्ञान आत्मा का लक्षण घटता नहीं है। और श्रुतज्ञान लक्षण कहो तो घटता नहीं है क्योंकि सिद्ध में (श्रुतज्ञान) नहीं है। और केवलज्ञान लक्षण कहो, केवलज्ञान, तो वर्तमान संसारी जीव में तो केवलज्ञान तो नहीं है। तो ऐसा लक्षण होना चाहिये कि जीव की सर्व अवस्थाओं में अनादि-अनंत हो, लक्षण हो, और वो लक्षण जिसमें, दूसरे (पाँच द्रव्यों में), न हो - वो (जीव का) लक्षण है। जीव का उपयोग लक्षण है - चेतना। इस चेतना लक्षण के द्वारा जीव और अजीव का विभाग पड़ जाता है।

समस्त अजीव द्रव्योंसे विभागका साधन तो चेतनागुणमयपना है; और वही, मात्र अब आगे कहते हैं कि वही मात्र, only (सिर्फ) इतना ही लक्षण है। देह लक्षण नहीं, कर्म लक्षण नहीं, राग लक्षण नहीं। आहाहा! शुभ राग या अशुभ राग, कोई जीव का लक्षण नहीं है। **मात्र स्वजीवद्रव्याश्रित** जो चेतना है - उपयोग लक्षण, ये स्व-जीवद्रव्य आश्रित है। वो ज्ञान लक्षण स्वजीवद्रव्याश्रित है, शास्त्र आश्रित नहीं है ज्ञान। जो ज्ञान लक्षण है - उपयोग वो शास्त्र आश्रित नहीं है, शास्त्र से उत्पन्न नहीं होता है, अपने जीवद्रव्याश्रित है। **होनेसे स्वलक्षणपने को धारण करता हुआ, आत्माका शेष अन्य द्रव्यों से** यानि आत्मा के सिवाय दूसरे जुदा द्रव्य हैं, उसका **विभाग (भेद)** जुदाई **सिद्ध करता है।**

जहाँ 'अलिंगग्राह्य' करना है वहाँ जो 'अलिंगग्रहण' कहा है, वह बहुतसे अर्थोंकी प्रतिपत्ति (प्राप्ति, प्रतिपादन) करनेके लिये है। कुंदकुंद भगवान ने अलिंगग्रहण कहा है मूल में। तो टीकाकार आचार्य भगवान फरमाते हैं कि **'अलिंगग्रहण'** कहा, मगर **'अलिंगग्राह्य'** कहने का आशय यह है (कि) वो एकवचन है मगर उसमें से ज्यादा बहुत कहने का भाव है, छुपा हुआ है।

तो वो आचार्य भगवान अलिंगग्रहण के २० बोल बताते हैं। २० प्रकार करके कहते हैं। उसमें २० बोल में से वो पहला (बोल का) शब्द है, पहला बोल - **जिसके** यानि कि यह (निज) आत्मा का **लिंगोंके द्वारा अर्थात्**, लिंग का अर्थ - **अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा** अर्थात् भावेन्द्रियों के द्वारा...। भावेन्द्रिय की बात चलती थी बहुत। द्रव्येन्द्रिय तो जड़ है, द्रव्येन्द्रिय तो जड़ है। भावेन्द्रिय खंडज्ञान जिसमें जानने की क्रिया होती है, उसका नाम भावेन्द्रिय है। वो जो भावेन्द्रिय प्रगट है, वो भावेन्द्रिय जो प्रगट है ऐसा जो लिंग है, उससे (अर्थात्) वो भावेन्द्रिय के द्वारा आत्मा पर को नहीं जानता है। **इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण** यानि पर का जानना, **नहीं होता वह अलिंगग्रहण है;** आहाहा!

क्या कहा? बात सूक्ष्म है! ये आत्मा है वो पुण्य-पाप से भिन्न है, परिणाम से भिन्न है, इंद्रियज्ञान से भिन्न है - ऐसी धारणा तक तो जीव आ जाता है। वो कोई नई बात, अपूर्व बात नहीं है। वो जो धारणा की, वो धारणा भी सही होनी चाहिए। मगर वो जो धारणा की है, वो आगम आश्रित है। देशनालब्धि आश्रित उसने धारणा की है कि मैं ज्ञायक हूँ, अकर्ता हूँ, कर्ता नहीं हूँ, मैं आठ कर्म से भिन्न हूँ, देह से जुदा हूँ, मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ। वो जो आगम के अनुसार, आगम में जो लिखी (हुई) बात है और श्रीगुरु ने कहा - ऐसी धारणा कर ली, मगर वो धारणा आत्मा का अनुभव (करने) में कामयाब नहीं है। धारणा हो गयी इसलिये आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है - ऐसा नहीं है। वो अपनी पूँजी नहीं है, वो परायी पूँजी है। दूसरों ने कहा इसने (मान्यता में) धार लिया; तो धारणा से काम होता नहीं है क्योंकि धारणा पराश्रित होती है।

कहा गुरुदेव ने, कि ये नौ तत्त्व से भिन्न है, छह द्रव्य से आत्मा जुदा है, पुण्य-पाप से भिन्न है, आत्मा अनंत गुणात्मक है, आत्मा ज्ञायक है, ऐसे-ऐसे आगम के द्वारा अर्थात् देशनालब्धि के द्वारा.... प्रत्यक्ष गुरु हो तो देशनालब्धि के द्वारा (और) प्रत्यक्ष गुरु का योग न हो तो शास्त्र के द्वारा, जैसा शास्त्र में लिखा, सर्वज्ञ भगवान ने कहा, संतों ने लिखा, ऐसी धारणा कर लेता है। उस धारणा की कौड़ी की कीमत नहीं है। धारणा के भरोसे रहनेवाला जीव आगे नहीं बढ़ता है। अपने को तो आगे बढ़ने की बात है, रुकने की बात नहीं है। जो रुकावट का point (बिन्दु) है वो उसको point out (दिखा) करके, उसको गौण करके उसके आगे बढ़ना है। जानकर उससे आगे बढ़ना है।

धारणा तो मानसिकज्ञान है। मानसिकज्ञान तो है ही, मगर पराश्रित है। दूसरे ने कहा वो धार लिया। अपना तो अनुभव उसमें मिलाया नहीं है। हाँ बोल दिया (बस)। और समझो कि मानसिक धारणा हो गई, और कदाचित् आयुष्य पूर्ण हो गया और चार इंद्रिय, तीन इंद्रिय में चला गया तो? मन भी गया, तो मन के साथ धारणा भी चली जाती है। धारणा तो (जहाँ तक) मन है तहाँ तक रहती है। इधर धारणा की, और दूसरे भव में मन से गया तो-तो धारणा साथ में रहती है। मगर मन छूट गया तो धारणा छूट जाती है, धारणा रहती नहीं है।

तो धारणा पराश्रित है, आगम आश्रित है, आत्माश्रित नहीं है। अभी धारणा से एक point आगे (भी) है और एक point से आगे दूसरा point है। अभी दो point (बिन्दुओं) की बात करनी है। एक point की बात की, तीन point बताना है। तीन point बताने का भाव फज्झर (सुबह) से आया है। एक point तो बता दिया कि धारणा; और धारणा भी सही होनी चाहिए। विपरीत धारणा की बात की तो कोई कीमत नहीं है। आहाहा! आत्मा ज्ञाता होने पर भी परपदार्थ का कर्ता मानता है, वो तो धारणा ही नहीं है। वो तो तद्दन विपरीत बात है कि मैं पर को करनेवाला हूँ और परपदार्थ का होता है कार्य तो उसमें मैं निमित्तकर्ता हूँ, वो तो धारणा ही गलत है। और मैं पुण्य-पाप का करनेवाला हूँ - ऐसी धारणा भी गलत है। वो तो धारणा ही झूठी है। मगर जिसको धारणा सच्ची हो गई, वो (यदि) धारणा के भरोसे रह जाता है तो वहाँ वो रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ता है। अपने को तो आगे बढ़कर आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति कैसे हो, वहाँ तक जाना है। वहीं भव का अंत होगा।

तो धारणा के आगे एक दूसरा stage (चरण) है, जो अनुभव के पहले आता है, वो निर्णय है। निर्णय यानि यथार्थ निर्णय। यथार्थ तो है मगर अपूर्व है। जो अनंतकाल से नहीं आया ऐसा निर्णय आता है; वो स्वाश्रित है (और) धारणा पराश्रित है। धारणा बहिर्मुख है, निर्णय अंतर्मुख है। आहाहा! ऐसा निर्णय आ जाता है कि जिस निर्णय के बाद उसको अवश्य अनुभूति आती है। धारणा के बाद अनुभूति आती नहीं है, (मगर) इसके (अपूर्व निर्णय के) बाद तो अवश्य अनुभूति आती है।

जैसे समयसार की १४४ वीं गाथा चलती है। उसमें आचार्य भगवान ने पहली लाइन में लिखा कि प्रथम क्या करना? कि प्रथम ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करना। ऐसा नहीं लिखा कि ज्ञानस्वभावी आत्मा को धार लेना; धारने की बात नहीं लिखी है। धारणा से आगे की बात लिखी है। तो कोई कहे कि ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा मैं हूँ वो तो मेरे को ख्याल है। ख्याल नहीं है भैया! ये बात कोई अपूर्व, जुदी type (जाति) की है। मैं जानता हूँ (ऐसा जो मानता है) वो आत्मा को नहीं जानता है। और मैं जानता हूँ वो आत्मा तक नहीं पहुँचेगा। मैं कुछ नहीं जानता हूँ; जहाँ तक आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव न हो तहाँ तक (मैं) कुछ जानता नहीं हूँ। ऐसा मन खुला रखे तो आगे बढ़ सकता है। बाकी (नहीं तो) वहाँ रुक जाएगा।

तो ये जो निर्णय है, वो निर्णय अतीन्द्रियज्ञान में नहीं होता है। (निर्णय) होता है भावमन में। अतीन्द्रियज्ञान में तो अनुभव होता है। मगर जो वो निर्णय है, वो ज्ञायक की ओर झुककर निर्णय हो जाता है। वो निर्णय की भूमिका है, वो अपूर्व निर्णय है, वो आत्माश्रित है, अंतर्मुखी निर्णय होता है। अनुभव के पहले की बात बताता हूँ। उसके लिये एक पंचाध्यायी शास्त्र है। उसमें उसका खुलासा है कि ऐसा निर्णय जब आता है जीव को, उसको हम कह देते हैं कि सम्यग्दृष्टि हो गया। हुआ नहीं, मगर भावी नैगमनय उसमें लागू पड़ जाती है क्योंकि अप्रतिहतभाव है। वह सम्यक् पाएगा, पाएगा और पाएगा ही।

तो प्रश्न होता है कि भाई! ऐसा अपूर्व निर्णय क्या चीज है? जिसने निर्णय किया उसको बताना चाहिए। क्यों छुपाता है? प्रश्न होता है। तो वहाँ पंचाध्यायीकर्ता फरमाते हैं कि भैया! वो वचनातीत है, निर्विकल्पवत् है और केवल अनुभवगम्य है। जिसको निर्णय आया वो ही जानता है और एक केवली

जानते हैं; तीसरा छद्मस्थ जानता नहीं है और जानता हो वो भी कह सकता नहीं है। जाननेवाला, जिसको अपूर्व निर्णय आ गया उसको छुपाने (का भाव) नहीं है मगर कह सकता नहीं है। हाँ! आत्मा का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हो गया वो तो कह सकते हैं। वो तो कह सकते हैं। मगर उसकी पूर्व-भूमिका में जो अपूर्व निर्णय आया वो वचनातीत है। उसको कोई वाणी के द्वारा कहा नहीं जा सकता। वह तो वचनातीत, केवल अनुभवगम्य, निर्विकल्पवत्, निर्विकल्प नहीं हुआ। निर्विकल्प हुआ नहीं है अभी। मगर उसका निर्णय निर्विकल्पवत् है। निर्णय फिरता नहीं है और अनुभव के बाद भी उसका विचार फिरता नहीं है। आहाहा! जैसा निर्णय आया था वैसा ही अनुभव हो गया। आहाहा! प्रत्यक्ष अनुभूति और परोक्ष अनुभूति में किंचित् मात्र फर्क नहीं है; (बस!) आनंद का फर्क है। एक दशा में आनंद नहीं है, दूसरी दशा में आनंद है। आनंद का फर्क है, इतना ही फर्क है। जैसा दृष्टि का विषय अनुभव के काल में आता है ऐसा ही अनुभव (के) पहले निर्णय के काल में ऐसा ही आ जाता है। मगर धारणा वालों को भ्रांति हो जाती है कि मेरे को निर्णय हो गया। निर्णय अलग चीज है, धारणा अलग चीज है।

संभव है धारणा वालों को (ऐसी भ्रांति होने की, कि) मैंने निर्णय कर लिया, जैसा आत्मा है ऐसा निर्णय आ गया - मैं ज्ञान स्वभावी आत्मा हूँ। आहाहा! मैं भी जानता हूँ। नहीं भैया! धारणा अलग चीज है और अंतर्मुखी निर्णय कोई अलौकिक चीज जुदा है। आहाहा! इसलिए धारणा के आगे जीव को निर्णय की भूमिका में आना चाहिए। निर्णय करना चाहिए कि ये मेरा स्वरूप कैसा है? ऐसा जो निर्णय बार-बार विकल्पात्मक निर्णय आता है, उसमें कोई जुदी जाति का एक सूक्ष्म विकल्प के द्वारा निर्णय आ जाता है जो वचनातीत है। है तो (अभी) विकल्प, निर्विकल्प अनुभव नहीं है। तो भी निर्विकल्पवत् है, फिरता नहीं है वो निर्णय। आहाहा!

मुमुक्षु: साहिब, थोड़ी गुजराती में थी, हिंदी में लेना।

पू. लालचंदभाई: अच्छा हिंदी! थोड़ी गुजराती चली। ये जो शुद्धात्मा है, वो शुद्धात्मा सर्वज्ञ भगवान ने जैसा कहा वैसा अनुभव के पहले निर्णय में आ जाता है; और जैसा निर्णय (में) आया वैसी ही अनुभूति हो जाती है। और बीच में थोड़ा time (समय) रहता है, किसी को अंतमुहूर्त में अनुभव होता है, किसी को थोड़ा time लगता है। आहाहा! ऐसी कोई अपूर्व निर्णय की दशा है।

यानि मेरा कहने का आशय ये है कि निर्णय और धारणा, उसके बीच में बड़ा अंतर है। छोटा अंतर नहीं है। जमीन-आसमान का फर्क है। निर्णय की भूमिका अलग है और धारणा की भूमिका अलग है। धारणा तो कर ली, किसी ने सिखाया तो सीख लिया। किसी ने सिखाया तो सीख लिया। ऐसे तो पाँच वर्ष के बच्चे को सिखाओ तो वो (भी) सीख लेता है। मैं जाननहार हूँ, करनार नहीं हूँ, जाननहार हूँ, करनार नहीं हूँ - (ऐसा) सिखाया हुआ है सीख लेता है, वो धारणा है। आहाहा! अपनी पूंजी नहीं। आहाहा! अपने से अंदर में से कोई ऐसा अपूर्व भाव आता है कि वो निर्णय की भूमिका में आ जाता है। वो निर्णय की भूमिकावाला निर्णय को आगे नहीं करता है (बल्कि) एक ज्ञायक को आगे रखता है, निर्णय को पीछे रखता है। निर्णय पीछे रह जाता है, रहते-रहते अनुभूति आगे हो जाती है (और) निर्णय छूट जाता है। ऐसी निर्णय की कोई अपूर्व कीमत है, धारणा की कीमत नहीं है।

ग्यारह अंग तक पढ़ा, धारणा तो सही कर ली। जैसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा ऐसी ही धारणा करता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का नहीं करता है? कि (हाँ!) करता नहीं है। पुण्य-पाप आत्मा का विभाव-स्वभाव नहीं है, वो पुद्गल का परिणाम है, तो (कहे कि) पुद्गल का परिणाम है। कर्मबंध का कारण है, तो (कहे कि) कर्म बंध का कारण है। निर्जरा का कारण नहीं है राग, तो (कहे कि) नहीं है। ऐसे-ऐसे नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा और आत्मा की धारणा, जैसा (आत्मा) है ऐसा कर लिया मगर यथार्थ निर्णय नहीं किया और धारणा को निर्णय मान लिया तो निर्णय की भूमि आनेवाली नहीं है। निर्णय की भूमि नहीं आयेगी तो अनुभव नहीं होगा। ऐसी बात है! अलौकिक बात है!

अभी आचार्य भगवान कहते हैं कि इंद्रियज्ञान से आत्मा भिन्न है। इसलिए जो जिससे भिन्न है वो उस कार्य का करनेवाला नहीं होता है। जैसे इस हाथ को काटकर के रख दो और हाथ को कहो कि चेक पर हस्ताक्षर कर दो। नहीं कर सकता। ऐसे भगवान अतीन्द्रिय ज्ञानमयी आत्मा उससे इंद्रियज्ञान, भावेन्द्रिय, खंडज्ञान भिन्न है। तो जो अतीन्द्रियज्ञानमयी भगवान जो आत्मा है, वो इंद्रियज्ञान से जानने का काम करता ही नहीं है क्योंकि भिन्न है। आहाहा! पर को जानता नहीं है। इंद्रियज्ञान के द्वारा जो आत्मा पर को जाने उसको हम आत्मा नहीं कहते हैं, अनात्मा कहते हैं। इंद्रियज्ञान के द्वारा आत्मा पर को जानता है उसको हम आत्मा कहते नहीं हैं, अनात्मा (कहते हैं), अज्ञान आत्मा है। आहाहा! पर को जानने के लिए भी इंद्रियज्ञान साधन नहीं है। स्व को जानने के लिए तो नहीं है - वो दूसरे बोल में आयेगा। पहला बोल चलता है।

ये आत्मा है अतीन्द्रियज्ञानमयी परमात्मा है। यदि ये परमात्मा इंद्रियज्ञान के द्वारा पर को जाने तो सिद्ध भगवान को (भी) पर को जानने के लिये इंद्रियज्ञान चाहिए। परंतु परमात्मा के पास तो इंद्रियज्ञान नहीं है और लोकालोक जानने में आ जाता है। तो इंद्रियज्ञान तो उनके पास नहीं है। तो जो सिद्ध भगवान (के) पास नहीं है वो मेरे पास अभी नहीं है। जो सिद्ध भगवान (के) पास अभी नहीं है तो मेरे पास भी अभी नहीं है। मेरे से भिन्न है (वो)। आहाहा! जो सिद्ध भगवान अपने को और लोकालोक को जानते हैं उसका साधन क्या है? कि अतीन्द्रियज्ञान उनके पास साधन है। तो मेरे को भी स्व और पर को जानने का साधन अतीन्द्रियज्ञान ही है, इंद्रियज्ञान मेरा साधन नहीं है, क्योंकि इंद्रियज्ञान मेरे से भिन्न है। आहाहा!

कहते हैं पहले बोल में। कहते हैं, फरमाते हैं आचार्य महाराज कि, हे भव्य प्राणी! आहाहा! देख! कि इस इंद्रियज्ञान से जुदा करने का साधन क्या है? कि चेतना लक्षण। इंद्रियज्ञान परद्रव्य है। उसमें शीर्षक में लिखा कि ये जीव और देहादि-शरीरादि से भिन्न करने का साधन क्या? तो शरीरादि में कर्म, इंद्रियज्ञान, द्रव्येन्द्रिय - सब शरीर में हो गए, बाह्य तत्त्व, बहिर्तत्त्व हैं। उससे जुदा करने का साधन चेतना लक्षण है। तो चेतना लक्षण स्वद्रव्य आश्रित होता है। और जो उपयोग लक्षण है, वो उपयोग लक्षण आत्मा के साथ जब अनन्य अनुभूति होती है, तब इंद्रियज्ञान से मैं भिन्न हूँ- ऐसा भान हो जाता है। इंद्रियज्ञान रह जाता है मगर इंद्रियज्ञान में ममता नहीं होती है। इंद्रियज्ञान मेरा है, इंद्रियज्ञान से मैं जानता हूँ शास्त्र को। शास्त्र को जानने का साधन इंद्रियज्ञान नहीं है। देशनालब्धि सुनने का साधन इंद्रियज्ञान नहीं है। आहाहा! तो अतीन्द्रियज्ञान तो मेरे पास है ही नहीं। तो क्या देशनालब्धि नहीं सुनना?

सुनने, न सुनने का प्रश्न नहीं (है)। तू समझ! सुनने, नहीं सुनने का प्रश्न नहीं है।

मुमुक्षु: वस्तु की व्यवस्था का प्रश्न है।

पू. लालचंदभाई: बस! वस्तु क्या है? तेरे में श्रद्धा मिथ्या हो गई। ये मिथ्याश्रद्धा निकालने का प्रयोग है। भावेन्द्रिय को छोड़ना नहीं है, द्रव्येन्द्रिय को छोड़ना नहीं। किसी को ग्रहण करना नहीं, किसी को छोड़ना नहीं। जैसा वस्तु का स्वभाव है वैसा निर्णय करके अनुभव कर ले, कि इंद्रियज्ञान मेरी चीज नहीं है, तो मिथ्यात्व टल जायेगा, इंद्रियज्ञान रह जायेगा, और उसमें एकत्वबुद्धि छूट जायेगी। उसका भी ज्ञाता बन जाता है। चेतना लक्षण द्वारा अपने आत्मा को अनुभव में लिया तो इंद्रियज्ञान तो रह गया, क्षण भर (के लिए) तो रुक गया। जब अनुभव का काल आता है न तब भावेन्द्रिय बंद हो जाती है और नया अतीन्द्रियज्ञान उघड़ता है, उसके द्वारा आत्मा की अनुभूति होती है। और अनुभूति से बाहर आता है तो इंद्रियज्ञान जो भावेन्द्रिय है, वो फिर से चालू हो जाता है। उसकी function (प्रक्रिया) चालू हो जाती है। मगर वो (जो) इंद्रियज्ञान है वो ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है। आहाहा! ये परज्ञेय है, वो मेरा ज्ञान नहीं है। आहाहा!

ऐसे इंद्रियज्ञान से जुदा करने का साधन अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा और अतीन्द्रियज्ञान यह- वो जुदा करने का साधन है। अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा भी जुदा करने का साधन नहीं है। अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा के आश्रय से अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ, उसने आत्मा और अनात्मा को जुदा कर दिया। अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा तो सबके पास है। हें? और इंद्रियज्ञान और राग तो सबके पास पर्याय में है। तो जुदा कर देवे न, आत्मा! आत्मा निष्क्रिय है, उसमें जुदा करने की क्रिया होती नहीं है। तो अब क्या करना? कि जो अतीन्द्रिय ज्ञानमयी आत्मा है वो मैं हूँ, वो मैं हूँ, मैं-पना ज्ञायक स्वभाव में आया - ऐसा जो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ उस अतीन्द्रियज्ञान ने आत्मा और अनात्मा को जुदा कर दिया।

संवर प्रगट हुआ, उसने आस्रव का निरोध कर दिया। आत्मा का होने पर भी, आत्मा के अस्तित्व (में) होने पर भी, आस्रव का निरोध नहीं होता है। आस्रव का निरोध तो संवर का उत्पाद और आस्रव का व्यय, सम्यग्दर्शन का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय, सम्यग्ज्ञान का उत्पाद और मिथ्याज्ञान का व्यय, तो जो सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है वो ज्ञायक के आश्रय से होता है। और मोक्ष अधिकार में वो बात ली है कि आत्मा और बंध- उन दोनों को जुदा करने का साधन क्या है? आत्मा तो है और रागादि बंध, भावबंध भी पर्याय में है। उनको जुदा करने का साधन प्रज्ञाछैनी है; प्रज्ञा यानि अंतर्मुख ज्ञान। वो जब अंतर्मुख ज्ञान होकर ज्ञायक मैं हूँ, चिदानंद आत्मा हूँ, ये रागादि मेरे नहीं हैं - ऐसा नया ज्ञान, अनुभव ज्ञान प्रगट होता है, उसका नाम संवर है। वो संवर का उत्पाद हुआ तब आस्रव का व्यय होता है। अकेली ज्ञायक की सत्ता होने पर वो आस्रव का व्यय और संवर का उत्पाद नहीं होता है। मगर मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा मैं-पना जब ज्ञायक में आया वो पर्याय है परिणाम, वो परिणाम शुद्धोपयोग है। उस शुद्धोपयोग ने आस्रव से जुदा पाड़कर अनुभव कर लिया।

यानि परिणमन करके एक परिणाम का व्यय हो जाता है, पूर्व पर्याय का। पूर्व पर्याय में जो अज्ञान है और ज्ञान प्रगट हुआ; ज्ञान आत्मा का ज्ञान। आत्मा का ज्ञान प्रगट हुआ तो पूर्व पर्याय में

अज्ञान था, उसका अभाव हो गया। और ज्ञान ने अज्ञान और आत्मा को जुदा किया। ज्ञान जो प्रगट हुआ उसने जीव तत्त्व और आस्रव को जुदा कर दिया। जुदा करने का साधन चेतना लक्षण है, यानि पर्याय है वो। वो पर्याय आत्मा में जब अभेद होती है, तब इस इंद्रियज्ञान से मैं जुदा हूँ, देह से जुदा हूँ ऐसा भान हो जाता है। उस समय उसको अतींद्रिय आनंद भी आता है।

तो, पाँच मिनिट बाकी हैं। आज एक घंटा पूरा करना है।

जिसके लिंगोंके द्वारा अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण यानि **(-जानना) नहीं होता** आहाहा! ये भगवान जो अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा है, उसका इंद्रियों के द्वारा, भाव इन्द्रियों के द्वारा जानना नहीं होता है। इस आँख से ये दीवाल जानने में नहीं आती है, इस कान से शब्द (का) सुनना नहीं होता है, इस जीभ से खट्टा-मीठा रस का ज्ञान नहीं होता है। ऐसे जो भावेन्द्रिय, खंडज्ञान है, वो आत्मा उसके द्वारा यदि जाने तो आत्मा और इंद्रियज्ञान एक हो जाता है, वो विभाग होता नहीं है, उसका नाम अज्ञान है। इंद्रियज्ञान को मेरा मानना और अतीन्द्रियज्ञानमय भगवान आत्मा को दृष्टि में से छोड़ देना और एक समय की जो ज्ञान की पर्याय भावेन्द्रिय, खंडज्ञान है, उसको मेरा मानना उसका नाम अज्ञान है और (वो) मिथ्यात्व-संसार का कारण है। उसको जुदा करने का साधन चेतना लक्षण है। यानि अंतर्मुखी उपयोग हुआ, शुद्धोपयोग हुआ, शुद्धोपयोग में आत्मा जानने में आया कि मैं तो अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा हूँ - ऐसा (जो) ज्ञान प्रगट हुआ उसने जान लिया कि इंद्रियज्ञान मेरा नहीं है, देह मेरा नहीं है। देह रह जाता है, (देह का) ममत्व छूट जाता है। राग रह जाता है, (राग का) ममत्व छूट जाता है। भावेन्द्रिय रह जाती है, (भावेन्द्रिय का) ममत्व छूट जाता है, एकत्वबुद्धि छूट जाती है। बस! इतना ही। बाद में लीन होता है तो लीन होते-होते भावेन्द्रिय का अभाव होकर केवलज्ञान प्रगट होता है।

नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार आत्मा का स्वरूप क्या है? कि **'आत्मा अतीन्द्रियज्ञानमय' है इस अर्थकी प्राप्ति होती है।** जिसको ऐसा बैठे कि इंद्रियज्ञान मेरा नहीं है उसको अंतर्मुख होकर आत्मा अतीन्द्रियज्ञानमयी है, ऐसे २० अर्थ में से एक अर्थ की प्राप्ति होती है, जो निषेध करता है कि इंद्रियज्ञान से मैं पर को जानता नहीं हूँ (उसको)। आहाहा!

मुमुक्षु: यह एक अपूर्व बात आयी, हों। एकदम नई बात आई।

पू. लालचंदभाई: सच्ची बात है! 'नई बात' कहा उन्होंने। ऐसा नहीं कहते कि मैं जानता हूँ, मैंने सुनी हुई है - ऐसा नहीं कहते हैं। ऐसा होना चाहिए, तो नई बात ख्याल में आए कि ये बात कोई अपूर्व लगती है। आहाहा! अपूर्व लगनी चाहिये। मैंने सुनी है (कि) इंद्रियज्ञान तो भिन्न है। नहीं.. नहीं.. नहीं.. नहीं..। तूने सुनी नहीं है। सुनी है - इसका अर्थ नहीं सुनी है। मगर मैंने नहीं सुनी है तो काम हो जायेगा। ये बात नई है! ओहो! इंद्रियज्ञान से मैं पर को जानता नहीं हूँ? ये क्या बात!

इस आँख से ये पंखा हिलता है (ऐसा) जानता हूँ? कि नहीं! आँख से जाने ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। तो आत्मा पराधीन हो जायेगा क्योंकि यदि आँख नहीं मिलेगी तो ज्ञान का अभाव हो जायेगा। आँख से जानता है? कि हाँ। तो आँख नहीं मिले तो नहीं जानता है? कि नहीं जानता हूँ। तो ज्ञान का ही अभाव होगा क्योंकि आँख तो मिलनेवाली है ही नहीं। सिद्ध परमात्मा होता है वहाँ आँख कहाँ है? आहाहा! वो ज्ञान का ही निषेध करता है। कोई कहे कि मैं आँख से पर को नहीं जानता हूँ?

नहीं जानता है। तो मैं अँधा हो जाऊँगा। नहीं! तू देखता हो जायेगा! क्या मार्मिक बात है! समझे किशोरभाई? भैया? आहाहा! ठीक है जैन साहब?

मुमुक्षु: तीन लोक को देखनेवाला हो जायेगा।

पू. लालचंदभाई: (हाँ), ये ज्ञान चक्षु अंदर की तरफ मुड़ जायेगी, ये चर्म चक्षु बंद होगी सब। आहाहा! इस आँख से तू देखता नहीं है। अरे! मैं आँख से देखूँगा नहीं तो मैं अँधा हो जाऊँगा। तू अँधा नहीं हो जायेगा, तू देखता हो जायेगा। आहाहा! अभी अँधा है तू। अभी तू आँख से देखता है न तो अँधा है।

ऐसा बनाव बन गया है। ऐसा बनाव एक बन गया। (एक) धर्मदास क्षुल्लक हो गए, क्षुल्लक। वो कारंजा में गए। वो घूमते-घूमते-घूमते (वहाँ पहुंचे), वहाँ भट्टारक थे। तो किसी ने कहा... सब (जगह) घूमते थे कि भगवान का दर्शन करना है, भगवान का दर्शन करना है। कोई कहे कि गिरनार जाओ, कोई कहे कि पालिताना जाओ, कोई कहे कि सम्मेदशिखर की १०० यात्रा करो तो भगवान का दर्शन हो जायेगा। कोई कहे आठ उपवास करो तो भगवान का दर्शन हो जायेगा। ऐसा सब कहें तो करता जाये। करता जाए मगर भगवान का दर्शन हुआ नहीं।

जब विरार में गया तो पूछे गाँव में कि भाई! इधर कोई जाननेवाला है? मेरे को भगवान के दर्शन करना है, मेरा कोई दूसरा काम है नहीं। तो एक भाई ने बताया कि ये कारंजा में देवेंद्रकीर्ति भट्टारक रहते हैं और बुजुर्ग हैं और समयसार के पाठी हैं। लगभग ८०, ८५, ९० साल के बुजुर्ग हैं। अच्छा! तो वहाँ गया और विनयपूर्वक वंदन करके बैठे और पूछा, बापजी! मेरे को भगवान का दर्शन करना है। मैं तड़पता हूँ, भगवान का दर्शन होता नहीं। ये किया, ये किया, ये किया.. सब बता दिया। वो सुन लिया उन्होंने।

अच्छा! उसने प्रश्न पूरा कर दिया। बाद में भट्टारक ने कहा, 'क्या अँधा है? देखनेवाले को देखता नहीं है?' तब (विचारा कि) आँख तो मेरी है। वो बोला नहीं, चुप रहा। मन में, मन में विचारता है। (इतनी) विनय तो है। ये क्या बोलते हैं? कुछ समझ में नहीं आता है। मेरी आँख है, और वो मेरी आँख को देखते भी हैं, और कहते हैं कि 'तू अँधा है, देखनेवाले को देखता नहीं है?' - ये क्या है? पाँच मिनट विचार किया शांति से। समझ में नहीं आया कि क्या है।

फिर पूछा कि बापजी! आपने जो कहा (वो) मेरी समझ में नहीं आया। कृपा करके फिर से मेरे को बताओ! तो दूसरी बार क्या कहा कि 'देखनेवाले को देखता नहीं है?' आहाहा! कि मैं ही देखनेवाला हूँ। देखनेवाला कहाँ है? मैं ही देखनेवाला हूँ। (ऐसे) देखनेवाले को देखता नहीं है तू। उसकी दृष्टि फिर गयी। बहिर्मुख से अंतर्मुख हो गया, वहाँ के वहाँ सम्यग्दर्शन हो गया। सीधा लंबा होकर वंदन किया। जैसे लकड़ी-लाठी गिर जाती है न (ऐसे वो लंबा हो गया), हाँ दंडवत्। गुरु समझ गये। गुरु समझ गये कि उसको दर्शन हो गया। (पूछा) क्या हुआ? भगवान का दर्शन हो गया। आहाहा!

'क्या अँधा है? देखनेवाले को देखता नहीं है?' जाननहार जानने में नहीं आता तुझे? ये जानने में आता है? आहहा! जाननहार जानने में नहीं आता तुझे (और) ये जानने में आता है। जाननहार ही जानने में आता है (इसमें) आजा न, जाननहार जानने में आ जाएगा; पहले विकल्प में और फिर

निर्विकल्प में। आहाहा! विकल्प में भी जाननेवाला जानने में आयेगा तब निर्विकल्प में जाननेवाला जानने में आयेगा। विकल्प में ये (पर) जानने में आता है तब तक निर्विकल्प अनुभव होनेवाला नहीं है।